स्वत्ब का बिलोपन

<u>स्वत्व का विलोपन</u>

डॉ. शकुन्तला दुबे

1.सुबुक सुबुक रोकर
यदि जड़ कर देती
मानव चेतना को भावनाएं
तो कलियां मूर्छाकर रह जाती
अभिनन्दन कर उस सृष्टा को
जिसने प्रेरणा दी थी उन्हें
फूल बन डाली पर इतराने की

संकल्प अनुबन्ध न
बन सकने की छटपटाहट में
विकलांग बन राजपथ पर पग
डगमगाते राजधानी की धरा पर
विवशता स्तम्भित सीता सी
परित्यक्त हो राम से कुछ न कह पाई
किन्तु धरा फट गई, इतिहास की पुनरावृत्ति
समय एक आवरण ओ
विष को पीने शिव की परिकल्पना में
प्रतिबद्ध रखा युग–युगान्तर तक जीवन जीने के लिए

04.02.85

2.
उन्नत पहाड़, सघन हरियाली से आच्छादित
उसकी विकलता भयंकर विथियाँ बनाए
जीवन पथ की डगर पर अवरुद्वता का आभास
अनन्त की खोज में सघन अन्धकार को चीरता

जब तक इस विकराल मोड़ को लाँघ
सिमिट न जाए उस छोर एक लम्बी घाटी में
जहाँ सख्त चट्टानों से उभर कर झरने
नेह की छमाछम वर्षा बन, हर बूंद टूटती
नैराश्य को धोने अमरता का उल्लास लिए
हर यौवन अतीत को समाहित करता
उद्‌बोधन भविष्य के आगमन का प्रहरी बन

09.07.1986

3.

धूप में झुलस कर रह गई नई कोपलें सी
कही अनकही बातों में स्तब्ध मूक सिले ओठों पर
विवशता का आवरण ओ
वर्तमान की विसंगतियों में गर्म हवाएं आज

समय की परिधि घूम रही पर चाक पर बैठा हुआ
मेरा ममत्व सिसक उठा है अबोध बालक–सा
जिसकी माँ की मौत हो गई है उसे मालूम नहीं परन्तु
माँ बोलती नहीं इसका आभास उसे हमेशा के लिए
गूंगा कर सदैव के लिए छोड़ गया है अकेला

24.08.86

4.

भावनाओं की अभिव्यक्ति का
कहाँ है उद्‌गम स्थान, न पूछे कोई
कलकल करती नदियों का बिखरती लहरों में
उद्‌गम गन्तव्य सिरों से बिछुड़ने उजड़ने का आभास नहीं
जीवन के क्षण दो–चार उपेक्षित रहे गर्म अधरों की साँसों में

संवेगों का तूफान लिए कही अनकही बातों में

थम गई धरा, क्षितिज पर सिमिट कर जा बैठी कब
आशा–निराशा की कल्पना स्वयं ने बनाई
सम्वेदनाओं को निष्प्राण होते देख
सुनकर प्रलय के शंख नाद
अनन्त है वेदना का फैलाव
मानव की केवल परिकल्पना में
दिग्दिगंत है प्रहरी बने अनुमोदन कर रहे
सृष्टि मे हर क्षण हो रही इस प्रसव पीड़ा का

05.11.1987

5.
कल्पना मे था जो सहस्त्रबाहू
वास्तविकता में बल विहीन
त्रसित मानव दलित वर्ग से उठ
उड़ान भर रहा इक्कीसवीं सदी का

अतीत भ्रमित अनजानी दिशाओं में
भटकने का एहसास बना उन्माद के सहारे
बढ़ता गया राह के कांटों में उलझ सुलझ कर
कर

अहं पर टूट गए बनते बिगड़ते सपने
कल तक सब कुछ संभल जाने का विश्वास
आशा–निराशा के विलोड़न में वर्तमान के साथ–साथ
चलने की तत्परता मौन निमंत्रण का पाथेय लिए रही

समय की माँग कगारों पर बने

घरौंदे बाढ में ग्रसित हो गये
नियति पर बैठा कोई वंशी की तान में
हर लेता चेतना को सम्मोहित कर

जीवन का यह सार, निरन्तर काल का बाना बना
कब तक भ्रमित करता रहेगा
वर्तमान को चिरन्तन सत्य बना
सदियों तक की सीमाओं को लाँघ, पिपासा में

12.09.1988

6.

चंचल मन की लहरों में
एक उन्माद, सरसता रिसती गई
मन प्रारम्भ पर अह्लाद बन
किसी प्रवासी के पदचाप सुन

घुंघरू बाँध लिए, जीवन गति ने
छपछम करती नाच उठी, अंकित समय की ताल पर
झूम मचा कर मदमाती बसन्त ऋतु सनसनाती बयार
धरती पर उग आई सरसों,

26.03.1994

7.

पवन में संवेगों का एकाएक झोंका आया
धरती से उठ अम्बर को छू लेने की लालसा बन
गिर गया हो बिजली बन वह आवेग सहसा
जंगल में धू धू कर जल उठी दिशाएं, चहुँ ओर फैला आतंक

झुलस कर रह गई अटकी वृक्षों पर छायी हरियाली
मातृत्व की तरलता सीमित कर जड़ित धरा पट रही निरन्तर

अपने आक्रोश में पवन ने क्षण भंगुर कर दिया स्वयं के लघु प्रयास में
धरा जड़ित, असहाय तकित,

सन्देशों को संकल्प के अतीत के समस्त संदर्भों ने
खण्डित जीवन पथ पर बिखर गए मरूभूमि की राख में सिमिट
अति कष्टदायक चलने को विवश मेरे लहुलुहान चरण, मौन आवाह्न
चेतना को उद्वेलित करता निरन्तर पवन की याद में

पवन का वेग धरा की निजी सम्पत्ति बना कब
कौन रोक पाया उसे अपनी गोद में सुला कर आंचल में छिपा
उठा स्वयं वह अम्बर को छू लेने के दुस्साहस में मुक्त हो
अश्रु से प्लावित मौन धरा तकती रही, लौट आने की प्रतिक्षा में केवल

20.03.1996

8

मृत्यु के आने की प्रतीक्षा वर्तमान की परिधि को करती असीमित
क्यों व्याकुलता जीवन क्षण भंगुर कह उद्देलित करती
इतिहास के स्वर्णिम पन्नों सा उड़ता, फड़फड़ाता आकुल मन
समय के साथ गिरता पड़ता बढ़ता इठलाता गुनगुनाता
प्रिय मिलन की आश में लिपटा दुलराता सागर की लहरों सा
तट को कस कर पकड़ लेने के बाद झरझर कर बिखर
लौट पड़ता सागर में आत्मसात् होने के लिये
एक निरन्तन सत्य उद्भासित करता रहता लिप्सा से लिपटा
जीवन मृत्यु क्यों, कैसे, कब, ये प्रश्न है नादान
जीवन के अमूल्य क्षणों को भस्म कर देने के प्रयास
बीते क्षण प्रति क्षण, अंगारे बने या राख बन
रहते पृथ्वी पर तब तक जब तक वह
पवन के वेग मे उड़ान बन, गगन को छूने के प्रयास में है रत

28.06.1996

9

बालू पर पड़े चिन्ह
अमिटता के स्वप्नों को संजोये
पवन के वेग में
बालू के कण बने
तिरोहित होते गये
एक सूनी राह बन
उड़ गये गगन के
नीर झर झर
कसक पीड़ा की लिये
पर प्राण जीवित अभी तक
वरदानों की आश लिये
मान अभिमान में
प्रणय का संवेग सारा
उड़ा ले गया यौवन को
पावस ऋतु सा
मेरी बगियों के सारे फूल
प्रतिक्षा में निरन्तर
अनुराग सिसकता
अज्ञात सम्मोहन में
पिघली निरन्तर हिम की चट्टान
शास्वत विवशता का इतिहास बन

10

वेदना की शिला पर
अश्रुपात हो या हिमपात
अनुभूति को ही नतमस्तक
होना पड़ता समय के साथ
हिंसा में भटके मानव से

पूछे कौन अहिंसा का गान
चन्द मान्यताओं की धरोहर सजा
पहचान न पाओगे सत्य महान
चाहे बलिवेदी पर चढ़ जाये इन्दिरा गाँधी
या अगणित हत्याओं का अभिशाप
मूक व्यथा मुखरित हो जाती तो
अतीत न बनकर आता बार बार
हिंसक पशु सा मानव बना समाज में
जंगल से भागा वह नहीं है क्योंकि
वहाँ तो है प्रकृति का साम्राज्य
वह तो आतंकित है अपने आपसे

11

उर ऊरुझानी किसकी बाँसुरिया
श्याम की थी कालिन्दी तीरे, नित रास रचाती
गोपियों का मन हरती, स्पन्दित करती
क्यों मेरे मन मरीचिका को हर क्षण
लम्बे इतिहास की तरह शास्वत सत्य मान
भावनाओं का संघार हुआ वर्तमान की पकड़ संभालने में
पराजित हो अंह ने कितनी बार कहा अज्ञात के सम्मोहन में है नादान
जन्म–जन्मांतरों से भटक रहा, विश्वासों की वेदी पर
क्यों गा रहा फिर भी प्रभाती के गान

12

भावनाओं की आपाधापी में
डूब गया जो भी था कुछ निज का मान
टूट पड़े अश्रु प्रपात सूखी चट्टान पर बिखर
धरा के ममत्व में लिपटे
सुबुक सुबुक कर मुँह छिपाने के लिये

करुणा को आँजुल में बांधे, कालचक्र
कब तक घूमाता रहेगा अबोध बालक को
क्षितिज पर उगते लाल गोले में माँ की मधुर मुस्कान
रीझता जायेगा कालान्तर तक क्या वह
जो वर्तमान की पकड़ को पा न सका अभी तक

01.09.1985

13

किन्तु के लग जाने के बाद, मौन का अहसास
मरूभूमि के फैलाव सा, अक्रान्त करता मेरे मन को
एक पहाड़ी दरिया, अपनी चपल गति से बढ रही
जड़ विहीन करती तट पर खड़े वृक्ष से मेरे विश्वास को
जो गिरते पड़ते पूछ रहे सूने आकाश से, क्या यही है उसकी नियति
दरिया से प्यार की ?
क्यों न प्रलय को ललकार ताण्डव का नृत्य कर
आत्मसात् कर लेता शंकर सा मेरा अहं
चहूं ओर फैला हाहाकार पूछ रहा, सती तो
कब की कूद पड़ी है, उसको करुणा की चीत्कार सुन
पूछेगा कब तक होता रहेगा क्यों ये अनर्थ, कलियुग को बदलने में
है क्या तू असमर्थ ?

10.07.1991

14

हाहाकार करती, चीखती चिल्लाती
चेतना से उड़ उड़कर चिंगारियाँ फूकती
एक ही स्वर में क्रन्दन करती, उसको बिजली का आघात (E.C.T.)*
कब कर सका शान्त, फिर भी प्रयत्न जारी है
उस वेदना को मूक करने के, मनोचिकित्सक के

प्रशस्त प्रहरी के जो सीमा पार अपना झण्डा गाड़
वीर गति को पाने के प्रयास, हूक उठी सूनी वादियों में
कुछ न कर गुज़र सकने की करुणा बन
श्रद्धा सुमन बन चढ़ाने के लिये लालयित
उसे जीवन राह तकने के बाद, दिखा न आर–न–पार

15
न जाने कब, क्यों, कौन, मुझे सागर तट से आती लहरों सा
विश्वास लिये, अह्लाद लिये, एक खिलवाड़ लगा
अपनी समस्त बाहुबल के आगोश में भर, उल्लास मुखरित करता
उन्माद बन बिखरा मन प्राणपन, मन्त्र बन, स्पन्दित श्वास, प्रतिश्वास में

सम्मोहित चेतना के खुल गये द्वार, प्रिय के मान को भंग कर देने
वरदहस्त प्राप्त खड़े मौन–सा समाधि की तरंगों में
रिस्ता गया अन्तरतम की गहराइयों में, जो भी था अपना पराया ज्ञान
खोज कर भी पाकर रुका कोई, केवल नेति नेति कर पुकारता रहा

कालचक्र के साथ घूमता क्षितिज के उस पार क्या है ?
पर जीवन के इस सूनेपन में, खिल उठा अरमानों को संजोये
एक सिंदूरी माँग सा अधियारी को बढ़ता देख घटाटोप में
रोज शाम आने पर

15
भूख और प्यास में कंपकंपाई जिन्दगी
मूसलाधार वर्षा से त्रसित क्या माँगती
केवल बरसात थम जाने की राह को साकार हो जाना

मौन में झर झार रहे अश्रु कितने, आँधी तूफान के झंझावातों में
वृक्ष से टूटे पत्ते सैलाब बढ़ चले नदियों की धार में
नैराश्य के क्षणों में किसने संजोये विश्वास की धुरी पर
मौन की स्वीकृत की धुन सतत् प्रिये बज रही एकान्तिक में बांसुरी
कालचक्र के प्रहारों को इस जगत के जन्म मरण के उपहारों को

27.07.1994

16

कियेे गये वायदों से अधिक दर्द लगा अनकही बातों में
व्यर्थ का विवाद बन संवेगित करता रहा चेतना को
मरी मछली की गन्ध–सा, उन्माद बन व्याकुलता छाई अन्तरतम में
जीवन के मध्यान्तर, कुहरे में छाई सूरज निकलने की प्रतीक्षा
सहसा रूपहली धूप बनी, बादलों के बीच खिलवाड़ करती
मेरे अहं को धीमा सा स्पन्दन दे, 'मैं' का नया आयाम बन
शंका से अभिशप्त, प्रिया का अपमान न सह सकने के बाद
क्या मिला तुम्हें प्रलय को धरती पर लाकर परम ब्रह्म
सभी ग्रसित हो रहे पगपग पर धरती पर मानवीय संस्कार
साक्षी केवल अम्बर–धरती, हूक भर आत्मसात् अन्तस की पीड़ा
क्यों रखे हम तुम्हें परम्ब्रह्म के विश्वास की छोर में बाँधे
मानव विकलांग पड़ा छिटक कर, जो है निराकार का अंश
राक्षण गरम कर रहे इस धरती पर मूल्यों का बलत्कार

17

अनन्त को इंगित करती चहु दिशाएं
मुखरित हो अभिनन्दन हिमाछाच्दित हिमालय के प्रांगण को
मानव स्तब्धित हो भूल गया अपनी सीमा का ज्ञान
आह्लादित हो झूम उठा, बन गया वह स्वयं विभो
धूमिल हो गई शनैः शनैः आभा, अवशेष स्मृतियों की चकाचौंध
कालग्रसित हो कालिमा में बदल गया, विषमताओं से भरा संसार

छा गया प्रेतात्माओं का साम्राज्य, पीड़ा की सतत कसकती टीस सा
भटकती आत्माओं को त्रास मिल सकेगा क्या, जो जन्मजन्म के बन्धनों
से बंधा
उस अनुपम रूप को अनुहार आसीम को साकार रूप में
अपनी पलकों में भर लेने के अनेक प्रयत्न का अभिमान लिये
लालिमा बनती गई कालिमा चहूँ ओर, उनकी भी अवशेष याद
चेतना पर एक अमिट विश्वास उस दिव्यदर्शन का, दो इन्द्र धनुष देख

20.05.1999

18

स्मृतियों को सजो लेने की लालसा बन कसमासाई
बेला, चमेली, गुलाब की पंखुड़ियाँ झर जाने पर
उनकी गन्ध मेरे अन्तस में समाई, स्मृतियों को सजोये

प्रेम प्रीति जीवन वीथी पर अनन्त सी फैली जो थी
उर में पतझड़ बन आज क्यों लगती अपनत्व विहीन
स्मृतियों को सजो ...
उस पार सर्वस्व लग रहा है आगोश लेने को आतुर
इस पार बिछड़ते समबन्धों की लड़ी, टूटी जो, चेतना में वेदना की हूक बन समाई
स्मृतियों को सजो ...
अंश का आभास तिरोहित अंधकार में, पदचाप लग रहे शून्य में सामाये
निशब्द में निरन्तर गूंजती पपीहे के रटन सी पुकार
स्मृतियों को सजो ...

19

बाढ़ में बह गई मेरी झुपड़िया, जल का विपल्व, गगन घन्घोर है
चहुँ ओर दिख रहा आतंक पेड़ों में बैठे पक्षी भीगे परों को सुखा न पाते
इस दारुण दरिद्र की व्यथा अनन्त है, बाढ़ में बह गई ...

किसको थामू किसको अपना कह कलेजे से लगा लूं, खोया सब कुछ जो अपना था
व्यर्थ सहेजता रहा इन सबको जब जीवन नैया को बह जाना था
फिर भी मेरा मूर्ख मन, फफक फफक कर रोता – बाढ़ में बह गई ...

बहुत जतन से जोड़ा जिन खेतों को, बीज रोपा और फसल की आश लगा बैठा
देख रहा हूँ, उन सबको बहता – अपने मन के सैलाब में साक्षात प्रलय सा
अज्ञात में विरहगीत सा, सम्मोहित जीवनलिप्सा, बाढ़ में बह गई ...

मृत्यु के पदचाप पड़ बढ़ते गये समय के परिधान पर
मोक्ष की आशा लगाये, साधु तपस्या में अशान्त मन को स्थिर करता
अस्थिर चित्त की दशा देख रहा, समर्पण भाव से, बाढ़ में बइ गई ...

20

ऐसा क्यों होता है ?
भावों का क्रन्दन आँसु बन, झरझर बह गालों पर बिखर गया
आ लगा जब सूखे ओठों तक, लगा कोरा पानी सा कसैला, विवशता को बढ़ाता
ऐसा क्यों होता है ?
बसन्त का आगमन, फूलों पर छाये भौंरे चहुं ओर
उन्माद प्रतिध्वनित, कोकिल के गुन्जन का चहुं ओर
पतझड़ सी अतीत की स्मृतियाँ, एकाएक भड़क उठी
सूखी पत्तियों में आग लग गई एकांगीपन में, ऐसा क्यों होता है ?

मन प्राण पर छाये रिश्ते टूट जाते, रहे थे जो अनुबन्धों में बंधे
लोहे की मज़बूत जंजीर खुल जाती, मृत्यु के पदचाप सुनकर
एक अनुभूति, पानी का बुलबुला, जीवन लय–प्रलय को साकार बनाता
कुंठित इच्छाओं को झंकरित करता रहता चेतना का फैलाव ... ऐसा क्यों होता है ?

21

मेरे वातायन पर नन्ही किरण सी झूम उठी, तुम्हारी याद
न उसमें ग्रीष्म की तपन, न शीत की सिहरन
केवल उसमें मुखरित सम्वेदन की परख

स्मृति पटल पर खिंच आई, अनेकाएक कितनी आकृतियाँ
कुछ धूमिल, कुछ चटक, सजग होने के लिये झकझोरती
अनुभूति को मिथ्या बनाने में, व्यर्थ लगते सारे प्रयत्न – मेरे वातायन पर ...

कर्मभूमि, मरूभूमि सी तपती, जन्म–मरण का चक्र घूमता घूमता जाता
विभ्रान्त चित्त में विवशता, विवशता बन गई साकार तुम्हारी प्रतीक्षा में – मेरे वातायन पर ...

22

मेरे संकल्प, प्रेम से अनुरंजित वरमाला लिये
प्रेमी के साथ सप्तपदी की प्रतीक्षा में
आधुनिक युग की खण्डित नायिका बन
कीट पतंग से बिजली के बाट के आलिंगन में
जलकर, भौर होने तथा धूलधूसरित हो गये
पवन का वेग, समय के पंख पसार उड़ा ले जाता
जैसे राजधानी का परिवेश बदल जाता सड़कों की सफाई के बाद
फिर भी कुछ अवशेष, धरा में आत्मसात होने को ब्याकुल
मिट्टी की कीचड़ में सने, सूरज की तपन में, ऊष्मा बन
मूक व्यथा से जड़–चेतन के अन्तराल में तिरोहित रहते

23

क्षण क्षण अविधि तकते, साँसों में विश्वास पिरोये
जीवन की आपाधापी में, समय कितना बीता, कितना बाकी
मैं समझ न पाई
उन्मुक्त दिशाएं, बढ़ती नदिया–सी, अस्तित्व लगता खोता, उभरता
तट पर पहुँचने की उत्कण्ठा में, कितने पानी में डूब रही
मैं समझ न पाई
मस्तिष्क में विचारों का उत्पात, कुछ मोती बन चेतना में उभरे
कुछ अचेतन में रहे तिरोहित, विवशता सतत् खींच रही किस ओर
मैं समझ न पाई
पग थके शिथिल हो, विश्राम को आतुर, अकुलाया मन, तक रहा बढ़ता अन्धकार
मानव चेतना सुध–बुध खो थम जाती, जड़ता में खोजता क्यों अहं निर्वाण को
मैं समझ न पाई

22.06.2008

24

वायदा था अपनी खाक को भी सौंप देने का
वह चले गये बिना बतलाये चुपचाप, अन्तिम यात्रा पर
दम घुटने तक, जो मज़बूरी थी, पर जबान पर न लाये कभी
जीवन भर तो रहे थे खोजते, खुदा जाने गले में उनके क्यों अटकी रही
शायद अगले जन्म की आश में भटकती रहेगी वह ऊचाई जिसे जीवन भर ताकते रहे
मानव चेतना को अनेक प्रश्न आक्रान्त करते रहते, अडिग रहने पर
बन्धन माया जाल का छा गया जीवन भर प्रेम की खोज में उन्हे भी
सुप्त करता वर्त्तमान को जब थके पथिक को मृत्युपथ पर ला, मौन
शून्यता में निर्वाण है, तो साँसों में पिरोया क्यों जीवन लिप्सा को।

फरवरी, 2009

25

पानी के बुलबुले की तरह, एक ध्वनि मेरी चेतना को
ताजगी भरी गुदगुदाहट देकर, विलीन हो गई, कब की
फिर भी क्षण, प्रतिक्षण, उसकी याद में बिजली सी कौंध जाती अन्धकार में
मेरे जीवन के प्रशस्त मार्ग को उद्भासित करने के लिये
किसके सम्मोहन में उस विरहणी ने रात्रि में दीपक सजो रखा था
जो लपलपा कर बुझ जाता यदि पुनः तत्परता से भरा न जाता स्नेह से
मस्तिष्क में समाई यादें सुबक कर गर्म बिस्तर में सिमट कर रह गईं
अतीत की स्मृतिया सारी की सारी अहं का दर्प मजबूती से थामे
पिरोता गया अपने प्यारे की मणिका को, स्वयं की विवशता देख

03 फरवरी, 1994

26

चंचल मन की लहरों में एक उन्माद
सरसता रिसती गई, मन प्राण पर,
उस प्रवासी के पदचाप सुन
घुंघरू बाँध लिये जीवनगति ने
छमछम नाच उठी, अंकित समय की हरताल पर
धूम मचाती, मदमाती, वसन्तऋतु सनसनाती बयार
बिखेर गई अनुराग को धरती पर उसी सरसों पर
गुंजित है चहुँ ओर
मृत्यु की प्रतिक्षा में वर्त्तमान की परिधि असीमित
क्यों व्याकुलता जीवन लिप्सा को करती उद्वेलित
कागज के पन्नों से उड़ रहे फड़फड़ाते समय के साथ गिरते पड़ते
इठलाता, गुनगुनाता प्रिय मिलन की आस में मन
सागर की लहरों सा तट को छूकर लौट पड़ता आत्मसात होने का मन

निरन्तर सत्य को उद्भासित करता जीवन–मृत्यु के ये प्रश्न नादान
जीवन के अमूल्य क्षणों को भस्म कर देने के ये सारे प्रयास
स्थिरता से रहने पृथ्वी पर जो मौन निमन्त्रण पाकर उड़ान न भरते
राख बन गये वे, पवन के साथ गगन को छू लेने को जो आतुर

27

अन्तिम समय आ जाने का आभास था
युगयुगान्तर अन्तराल में सीमित कर बालू के
शून्य में एक बिम्ब का आकार बना, अनायास
विलोड़न सतत् चेतना पर, भयभीत चीत्कार
अन्धकार दबोच कर स्तब्धित भ्रमित दिशाज्ञान
मौन धरा पर कौन बिछा गया वितान अग्र प्रयाण का
सहसा आकाश में उग आये अगणित तारे चाँद छिपाये
एक अबोध शिशु की किलकारी सी चाँदनी फूट पड़ी
प्रकृति की इस छवि को अनुदार अभिनन्दन गाती रही भोर तक
उषा किरण को पकड़ कर रखने की लालसा बन
मानव की परिकल्पना अमरत्व से रही विश्वस्त
अन्तिम पड़ाव समझकर क्यों बिखर रही मोती की लड़ी सी चहूँ ओर
आत्मनिष्ट के प्रयास, निश्चेष्ट असह्य वेदना से परिपूर्ण
खिच रहे प्राण पखेरू किसी अज्ञात के सम्मोहन में
तिमिर अन्धकार को चीरती, उषा किरण फूटती, कम्पित अधरों को चूमती
शिशर की ओस सी थमी कमल पर नन्ही सी आस
इस क्षण को शाश्वता का आवरण पहनाकर।

28

मानव उद्भ्रान्त, अहं से आक्रांत, अट्टहास करता प्रश्नों के पीछे छिपकर
क्या धरा पर रहेगा उसका अपना सदैव अधिकार ?
वह जान न पाया किन्तु क्यों है यहाँ के साथ सब सार, निसार
अनुभूति में गुंथी अनुराग की गाँठ, खुल जाती मृत्यु को देख

स्वयं की निसारता को पहचानने के लिये ही तो आया था धरा पर
आसन जमाकर क्यों बैठा कटिबद्ध होकर, धरा तो निरन्तर
कालचक्र से आबद्ध चलती रहती, भ्रमित मानव अकेला खड़ा केवल
पड़ पड़ गिरती मौन धरापर वर्षा की बूँदें, वरदान दे गईं अनेक
खेत खलिहान से भर उठे हमारे लिये भण्डार अन्न के कितने सारे।

15.01.2001

Death of afemily member

29

बर्फीली चट्टानों पर एड़ियाँ रगड़ रगड़ कर
मिट गये धसे हुए कुछ पौध भूख को न मिटा सकने में
मन में जमे संकल्प, उग आये चेतना को रौंद कर
जीवन की इस साध्य बेला में

कौन का सन्देश सुन बाँसुरी पर बज उठी सुरीली तान
थिरक थिरक कर नाच उठा मन मयूरी अपनी घुन में
जीवन निस्सार, किन्तु लगता न वर्त्तमान में ऐसा कुछ
युद्ध में खिची हुई तलवारों के बीच, बजे कैसे शान्ति का बिगुल

मौन में छाया अभिसार प्रकृति की बहुयामी छवि का
मुदित पुलकित मन फुदक रहा गौरय्या के बच्चों सा
कौन कहता अहसास है, स्वयं के छलकते उन्माद का
स्मृतियों में पड़े चिर परिचित चिन्हों को मिटा न सका अब तक अहं

वर्त्तमान तक खिचती आई जो एक लम्बी लकीर सी
धुंधली न हुई, न ओझल, लालसा सी पड़ी चित्त पर
काल ग्रास में आकर, सिमिट जायेगी अतीत बन कर
इस विवशता में अश्रु क्यों निरझर झर रहे अश्रु बने मेरे गाल पर

मौन से आक्रांत चित्र पर समय प्रहरी बना कर रहा किसकी प्रतीक्षा में

संवेदनाएं जड़ित हो गई हैं ठिठुर कर शीत में, साँस में चलने का आभास है
ओठ कहने को फड़फड़ाये, कण्ठ अवरुद्ध कह न पाये, कहने को कुछ शेष न था
जीवन विवशता की गठरी उठाये, अन्धकार में आकाशद्वीप से आशा किरण
पथ को प्रशस्त कर रही निराशा को थामे, डगमगाये पगों में पकड़ लेने की
एक लालसा, विश्वास बन, गर्म बिस्तर पा, आराम करने लगी
मुझे जीवन फिर से क्यों अपना सा लगने लगा।

25 मार्च 2002

30

त्रिकोण की विकीर्णता को समेटे, लहुलुहान हो गया जीवन समबन्धों का पराग
अहसास बन रह गये केवल अतीत के सन्दर्भ सारे, मीठे और खट्टे
उद्वेलित मन पंख पसार कर लेता आत्मसात, अस्मित हो भूमि पर पड़ी राख
कर्मभूमि पर छाई पवन के वेग में जीवन लिप्सा, विवशता बन चहुँ ओर
हू हू कर प्रचण्ड ध्वनि चहुँ दिशाओं पर गूंज रही आलम्बन बनी
मन प्राण पखेरू उड़ा ले जाने को क्षितिज के पार, नियति का है मौन निमन्त्रण
अवशेष साँसों पर छाये मेरे होने का विश्वास, कम्पित अधरों को तुम्हें चूम लेने के लिए
प्रकाश पुंज का गोला, लगता निगल लेगा मुझको तुमको एक साथ
उत्सुकता ज्ञान की आँख मूंद कर मूर्छित हो जाने का संकेत करती
बीच में लटकी रही ज्ञान–अज्ञान की लड़ी, मृत्यु भय से सहमी
आवाक् थी अपनी असमर्थता को अपने जड़ित अधरों पर देख।

31

मेरे मनस् के उपजे विकास एक नहीं अनेक उद्गार, शिखा से जलते रहते
उन्हें भस्मीभूत करू कैसे ?
वह तो मेरे मन प्राण को झुलसा कर, मुझ अविवेकी को दिशाहीन करते रहते
लेकिन है क्या नही वह मेरे अंश ?

उनकी जय–पराजय में मुझे मिला सूर्य की तपन का भरोसा, नवशक्ति देता
उस भरोसे पर डाल दिया क्यों समस्त विकास ?
जो भी हुआ था, मेरे अतीत के संस्कारोंवश, चिता भस्म होने तक खोज में
लग जाये उस दिव्यशक्ति में क्यों अहं पूछता ?
अमरत्व की आड़ी तिरछी रेखाओं में अंकित कर कुरेदता रहता, दर्द का अहसास बना
आज विवशता को पहचान स्तंभित क्यों ?
जिन विथियों में खोजने जा रहा था अपनेपन का आभास
टूट पड़े अरमान, मोतियों की लड़ी से चहुँओर बिखरे क्यों ?
न मन टूटा, न तन में शक्ति, फिर विकारों की गठरी बाँध
चल सकता जीवन पथ पर अहं का अभिमान लिये कब तक ?
क्या तिमिर अन्धकार में ज्योति की खोज निरर्थक, बटोही की जो बैठा है
उनीदी पलकों में थामे सम्मोहन अज्ञात दिशा का अब तक ?

32

भाषा जड़ित, अधरों में कम्पन, प्राणों में स्पन्दन, विवशता प्रेरित करती
जन्मजन्मातरों में गुंथी सम्वेदना, मृत्यु की प्रतीक्षा में
चक्रव्यूह में भटका मन, चेतना पर सतत् एक ही रटन
हो रहा है निष्प्राण जीवन, आँखों में न रहा प्रशस्त जीवन पथ
मूक वेदना, स्मृति पटल को झकझोरती, आँधी तूफान से ग्रसित
धू धू करती जंगलों में प्रकृति, प्राणियों का हर साँस, अन्तिम साँस सी लगती
सब नष्ट करके, शान्त रहेगा अवशेष मानव का अभिमान सन्ताप बन
एक नये प्रजातंत्र का आरोह विकल्प बना, युद्ध की नियति
ताण्डव नृत्य करता, तेल के भण्डारों को भस्मीभूत करता, प्रलय बना शंखनाद

22 मार्च, 2003

33

हरियाली के बाद, पीले हुए पीपल के पत्ते जो लहरा लहरा कर इठलाते रहे थे
शाख से सूख जाने के बाद टूट गये, या पतझड़ उन्हें ले गया भुलावा देकर

समय बदलने का था वायदा, पीड़ा सघन मौन साधे, प्रतीक्षा में है पीपल
गौरैया भी बैठ न पाती उस पेड़ की छाया में जहाँ बैठकर गाये थे कितने गान
थिरक–थिरक कर, हर डाल को चूमने की अपनी उड़ानों में
वर्षा की लम्बी प्रतीक्षा में, रेगिस्तान में तप्त शोले, बुझ पाये कैसे
जल जल कर स्वयं राख न बन पाये जैसे मुट्ठीभर ज्ञान न कर पाया सन्ताप को
रात भर सुबकते अधरों पर ममत्व पुकारता रहा घुटन बन
बम के गोले, कहर मचाते रहे, गगनचुम्बी इमारतों पर बरस कर
नींव को हिला देने को, धराशायी करने के, अपने प्रयास में
छिटक कर दूर, एक ही चिन्गारी ने, गरीब का झोपड़ा जला दिया
माँ की छाती से चिपका शिशु जीवित रहा हर साँस पर उम्मीदों का महल बना

30 मार्च, 2003

34

आड़ी, तिरछी, रेखाओं सा खींचा सुख–दुख, जीवन रहा है कितनी बातें इंगित
मिथ्या, माया जाल, समय की गति में उभरता, खोता, अपनत्व
यदि युद्ध मानव की इच्छाओं का वहन बन सकता इतिहास केवल
कहने को शब्द नही उस असहनीय पीड़ा के जिनके सन्दर्भ बदले, पर व्यथा
न अभी तक है बोझिल, सार जगत का मिथ्या, अहं न हुआ कहाँ निस्सार
मौन टूट रहा, दर्द की टीस सा उठ उठकर, प्रहरी बना प्रताड़ित करता क्यों ?
मुझे कुछ करके बदल देने का, नया सन्देश लिये निरन्तर
पीड़ा झर झराकर बरसती जाती, नयनों में वर्षा का उन्माद लिये
विश्वास की गठरी बँध जाने पर, निस्तेज आँखों में गुनगुनाती
जीवन की थाती लिये पूरब की लाली सी, आशा बन खिचाव मुझे आज

3 फरवरी, 2004

35

स्निग्धता समेटे, उर्वरता से भरपूर, प्रसन्नता में मन ही मन इठलाता
अपनत्व का आभास लिये, अतीत स्मृतियों में बिखर गया
ऋतु चक्र के साथ इतिहास, मेरी जीवन बगियों का फैलाव
फूलों से लदा, रंगों को बिखेरता, बसंत का सौंदर्य महकता
गलियारों, वीथिकाओं को संजोने अभिनन्दन गान, गूँज उठे जीवन पथ पर
फागुन का अनुराग, अल्हड़ युवतियों के समूह में होली खेलता
पतझड़ की खरखराती सूखी पत्तियों में उमड़ती अंधेरी देख
फूलों का सारा पराग, उर्वरता समेटे, संवेगों को लुटा रहा चहुं ओर
कल्पना साकार, शब्द अनुबन्ध बने, ओठ कम्पित हो गा उठे
विरह में कुछ कह सुनने में असमर्थ, व्यथित हो मूर्त्ति खण्डित देख
अहं है आक्रान्त, शान्त हो खोज रहा, आकार में निराकार।

15.03.2004

36

एक नारियल के पेड़ सा व्यक्त्वि अपनी जड़ों से खींच कर सींचता
बढ़ता गया उत्तुंग खड़ा आकाश को छू लेने के प्रयास में
अनायास न जाने उसमें कब उग आये फूल अधरों से लिपटे
प्लवित होते गये अनेक फल, हवा–सूरज के आगोश में
बाहर से कड़े, अन्दर से मलाई से रस भरे, गुम्बित आकार के
शरीर उसको पालने की लालसा में, ललचाए धरा पर खड़े
लड़ते रह जाते, जीवनदाता से जीवन गान का आश्रय पाने के लिये
आँधी तूफानों में, बसन्त की बयारों में, हिम सी ठंडी अमावस्या की रातों में
एक प्रवासी उस नारियल के पेड़ पर चढ़कर बाँसुरी बजाता था लय में
एक दिन निस्तब्धता चहुँ ओर थी, मृत्यु के पदचाप इंगित करती
क्रांति का बिगुल बजाती प्रकृति की गोद को रौंदती
उड़ गया हंस त्राण पाने के लिये, अवशेष कुछ शेष न रहा।

37

उर की व्याकुलता बूँद बूँद गिर, शीशे पर
मेरे वातायन पर क्यों प्रश्न अनेक, सीमाबद्ध न रह सकने में आकुल
व्यथा चहुँ ओर घिरी, व्यर्थ लगते तर्क वितर्क के सब प्रयत्न
अनकही बातों में उलझ उलझ कर, मन प्राण हो रहे अधीर
पथ जिन पग चिन्हों से बन गया था एक सपाट राह
थके पग उस राह में भटके खोज रहे आश्रय तिमिर अन्धकार में
जीवन उद्भ्रान्त, भावों में क्रन्दन, ज्वाला धधक रही चेतना पर
अहं झकझोरता, शब्द निर्झर टूट पड़े सूखी शाखों से धरा पर
जो अश्रु केवल दो बूंद थे, टपक पड़े पता न चला कब बहकर
जख्म बन गये गहराइयों में समाकर जो अश्रु समा गये अपने भीतर
टीस बन उभर आते चेतना पर जब लगा उन्हें उखाड़कर फेंक दूं
विवशता मन प्राण को सिंचित करती रही, स्निग्धता स्पर्श करती रही
हार अपनी जीत का अहसास लिये, सूखी खाल सी जीवित है
नई खाल के सृजन का सन्देश लिये जीवन की आपाधापी में।

10.03.2010

38

विश्वासो की डोर पर, पलपल संजोये रहा
सदियो से जहाँ जीवन, इतिहास केवल उसका गवाह है
टिमटिमाते दीप सा, भटके पथिक का मार्ग दर्शन, संतरी बना हिमालय
एकता में, अमन चैन में, अचानक उठा है अमरनाथ में कोलाहल
शान्ति भंग हो गई, चहुँओर फैला, आजादी का चीतकार वहाँ भी
खमोशी में यहाँ भी, वहाँ मधुमास सी छाई हर डाल पर झूमती
खेतों में हरित, चिन्नार के फूल पेड़ों पर, अधपकी फसल की महक
अभिनन्दन गान गा रही हिमाच्छादित पर्वतों से घिरी ये वादी
नदियाँ, नाले बह रहे निरन्तर, अमरनाथ के द्वार खुलने की गुहार
शिवोऽमं, शिवोऽमं, की नाद पर पड़ रहा पथराव का प्रहार

कौन देश से आया यहाँ आतंकवाद जिसकी सीमा न जान पाया कोई
रम्यता, सौम्यता पर तुषारपात, विचलित हो रहा है सारा समाज
आज़ादी के लिये अभिमान, प्रलय सी विभीषका की वेदी बना
मिलेगा क्या चन्द भटके सीमापार मानव को अमन का वरदान देकर
मानवीय सम्वेदनायें जब हो गई हों पत्थर, नुकीली टक्कर की रगड़ से गिर कर –
बिखर कर, धरा को रक्त रंजित कर धूल धूसरित नफ़रत से भरे मूक नागरिक
चन्द किशोर आक्रोश में, पत्थर उठा सीने में गोली खाने का अरमान सजा
निकल पड़े राजपथ पर, उनमें कौन नेता, कौन अभिनेता
पूरा शहर बसता कर्फ्यू की गिरफ्त में केवल यहाँ

02 जुलाई, 2010

39

विश्वास से ऊँचा कुछ होता है नहीं, यह मैंने जाना पहचाना
पतंगा क्यों शमा पर जलकर शान्त हुआ, ये नियति का चक्र यदि बन जाता
जीवन जिस धुरि पर बैठ गया वह अनजाना, अपना सा लगने लगता
विवशता की सीमा लाँघ लेना शून्य मे अज्ञात दिशा खोजना भ्रमजाल है
कर्त्तव्यनिष्ठ पथ पर अडिग चलना, डगमग पग को स्तब्ध हो संभाल लेना
कुछ देर बैठ पंख पसार, कल्पना में खेलना, पलायन करना मात्र नहीं
कौन कहता है मृत्यु अक्समात् आती है, क्षण क्षण अधीर हो पुकारने से
मृत्यु जीवन को अंगीकार कर लेती है, तिमिर अन्धकार में आशा की किरण जगा देती है।
मैंने जाना, तुम्हें पहचाना, लगा तुम्हारे सान्निध्य में जीवन बीता
एक नाविक की भांति पार मुझे उतारने आये, भ्रम पाला था
पर लगता है दिशायें उद्भ्रान्त, नौका डूब रही, घटाटोप बादल छाये
'बरस बरस कर गरज रहे, प्रलय का संकेत दे डुबा रहे हो कान्हा क्यों आज

यदि अन्त इतना विनाशकारी है क्यों तुमने मुझे भरोसा देकर जीवन भर
प्रतिपल चपल गति से चप्पू चलाया, मिलन की रासलीला में नौकाविहार करवाया
जीवन नैया को खेने वाले, आनन्द के धार से पहिले ही ओझल हो गये तुम
तुम्हें सौंप कर अपना कुछ नही रहता ये मान देने वाले साँवले
ये आँख मिचौनी का खेल, विरह वेदना सी असहनीय बनी क्यों आज
आशा–निराशा के झूले पर पेंग बढ़ते जाते अनायास ही मेरे
क्रोध उपजता, अहं छटपटाता, असफल होने का भय आ जाता
जीवन लिप्सा की अटूट डोर थामे, सूत में मणिगणिका को पिरो कर रखा
माला कब बन कर बिखर जाती अधीरता मन प्राण पर छा जाती
तिमिर अन्धकार में आँख मूँद कर भ्रमित करती नयनो बसी मनोहर छवि
यह संशय क्योंकर उपजाया, पल प्रतिपल फलित लगती है मिलन की आशा
इस भुलावे को मैंने कर्त्तव्य से ऊँचा प्रेम को माना है तुम्हारे।

40

आँखों के झरोखे से, कोमल वात्सल्य की पुकार, संसार की भीड़ में खो जाती
एकाएक वात्सल्य की पुकार ने अनजाने मोहक बंधन ने, मुझे पकड़ कर
बाँध लिया जन्म–जन्मांतर के रिश्तों की डोर में, अनूठे रिश्ते में नये,
उसमें चुम्बकीय शक्ति कुछ ऐसी थी, खींच कर बाँध लिया हो कसकर उसने
स्पर्श से खिल उठे, फूलों के गुच्छे डाली को झुका कर पेड़ों पर लटके
मधुमास की ब्यार, इतराती लगती पूरी वादी, दूर तक अनोखा एहसास
समय को थामे लगता भागते ही चला वर्त्तमान, साथ साथ हमदोनों के
उसमें जीवन की उमंग थी, मेरे में थे थके पाँव, फिर विवशता का न रहा कोई आभास
उसे पाकर लगा तिरोहित संसार का भ्रमजाल, समाया हम दोनों के स्नेह में विश्वास
मौन में समर्पण, दिशाओं में समाई कटिबद्धता मेरे आगोश में समाकर वह आश्वस्त था
वे क्षण बिखर कर मुखरित हो गये क्षितिज के पास नये रिश्ते की गुनगुनाहट में

23.09.2010

Lost pub, needed a foster home

41

मैन में स्तब्धता जो दिख न पाई, वर्षा में छिपी आकांक्षा सी
धरती के गर्त को चीरती, दावानल दग्ध उभान धरती पर आ बैठी
चेतना उससे साक्षात्कार करने की क्षमता मन मसोसकर अधीर रह गई
भावनाओं के भँवर में फंसी नैया, सुनामी की तरह विपल्लव में डूबी
पृथ्वी डावाडोल होने से कितने खण्ड विभाजित, इतिहास बने, बिगड़ गये
अवशेष विवशता कब से आशा किरण खोजती, ताण्डव नृत्य समाप्त होने के लिये
चतुर चितेरे की प्रतीक्षा में, ये अस्थिरता स्थिरता की भिक्षा माँग
रूदन कर रही अधकार जीवन पथ को अलोकित करने की माँग
कम्पन जो डगमगाया फिर स्थिर हो जाये
साथ साथ रहे अस्थिर स्थिति में साथी मेरा
मुस्कानों में विभोर गाता रहे, लहरों से विलोड़न करता
अधरों की प्यास सा मदिरा लिये प्रशान्त सागर मेरा
श्मशान की अग्नि सा प्रज्जवलित धू धू करता
नई क्रान्ति के लिये स्वयं की चिता बनाये
धूल धूसरित धरा के कण कण में
जीवन विष को आत्मसात् करने के प्रयास में अहं मेरा

सुनामी के बाद

12.03.2011

42

कौन कहता प्रकृति का आँगन सीमित रहता परिधि की सीमा में
माया भ्रमित करती विज्ञान की चकाचौंध, मुक्तहास अट्टहास ध्वनि क्या केवल ध्वनि ?
वहाँ गली गली, वन उपवन में, पल्लव पुष्प दूर दिगन्त तक आलोकित
जिन्हें देखदेख कर आँख थकित, पर हरियाली मन प्राण पर छाई रहती
रस धार सी, मुड़ कर जिसने न देखा, काल को कसकर नाँप रखा
उद्वेलित किया प्रकृति के साथ खिलवाड़ में, वह मानव भटका
कब समझा प्रकृति की लय संहार, विकराल को, अनुराग को
देश जीवन की अन्तिम छोर की पहचान, थकित पग में
बाँध गये हैं घुंघुरू केरल प्रदेश के, कथकली की थाप पर
लयबद्ध हो, कुछ कही, अनकही प्रेम की स्मृतियों में ध्वनित हो गई

17/2012 केरल की यात्रा

43

दुर्ग की खण्डित इमारत, इतिहास की सजोई धरोहर
अनूठे
सूखे पत्तों पर झर झर बिखेर रही कला के उपादान
जो आज की अट्टालिकाओं की विथि में धूल धूसरित है
भावनाओं का क्रन्दन उपहास बनकर रह जाता बीते क्षणों के बाद
जिसमें बिछड़े आत्मीय जनों ने प्रयाण किया अज्ञात दिशा की ओर
उस भ्रमजाल में स्तंभित अहं मृत्यु आने का आभास या
मानसिक त्रास में मनप्राण पर बरस उठे वे आँसू जो थमते नहीं
विज्ञान प्रकृति के निर्झर झरने बहते रहते सतत्
आलोकित जीवन पथ लगता, आशा–निराशा के झूले पर बैठा
उस अकेली चिड़िया सा जो पतझड़ आने पर
सूखी डाली पर बैठी, अन्धेरा बढ़ता देख, चित्त है ठौर के लिये
रात्रि में छिपकर भी, सुरक्षित हो जाने की खोज में निरन्तर

28.03.2012

44

मैं कौन ? ये प्रश्न नादान, कहाँ जाना मैंने अपने को अब तक
जीवन की आपाधापी में, पूछ पाता तटस्थ कौन यहाँ जीवन भर
जीवन मोह में लिपटा कर, दुलराया, खाया पीया, सोकर बिताया
गर्म रेत पर सागर से भटकती मछली आई, झटपटाई, अकुलाई
विस्तृत आकाश देख न पाई, सागर में समाई, साथ जीकर आत्मसात होना
नियति क्रम है, ये भी समझ न पाई जब मृत्यु समीप आई
उस पार पहुँचने की प्रतीक्षा में पल पल प्रश्न बने विवशता के
अवसाद बनाकर आतुर करते मधुर मिलन की आशा में
झरझर आँसु बन जीवन को क्यों दुर्भर कर देती ?

स्मृतियों का अम्बार चेतना पर, उनकी अमिट छाप
गुम्मित हो खिल उठे जीवन पथ को आलोकित करते
निष्फल क्षण बन क्यों टूट रहे ये प्रश्न नादान
अज्ञात का सम्मोहन, बँधी उसमें अहं की डोर
अर्ध–चेतना, अचेतन तक, चेतना में समाया लबालब जीवन स्पन्दन
जीवन का संघर्ष, पथ के हर मोड़ पर प्रश्नचिन्ह बन
भ्रमित या विभ्रान्त चित्त, भावनाओं का क्रन्दन करता
सहृदय वेदना अपरमित, चुप होकर सहन करना भाग्यवश
स्तब्ध हो मौन, अन्दर ही अन्दर ज्वाला धधक उठी
कब, कैसे, कब तक रहेगी उठाये मस्तक
दरिया में समा, उफान बना तट से टकराकर
सागर की ओर ले जायेगा निष्प्राण शरीर को
उन कटे हुए वृक्षों के टुकड़ों को जो पहाड़ी नदियों के वेग में
बहाते ले जाते हैं प्रिय के अंक में समा जाने के लिये निरन्तर

10.06.2012

46

निशेष शेष में है समाहित, चेतना के समागम से उद्भासित
राग के विस्तार बन मुखरित करता, भीड़ भरी तान सा सितार चहुँ ओर
प्रतिध्वनित करता रहा निशेष, शेष बन निरन्तर
स्मृतियों पर पड़ी छाप, वेदना की टीस सी सतत् चुभती रही
मनोनुभूतियो की गहराइयो में डूबती–उभरती
अवतरित राग के निरन्तर सृजन में मग्न
शेष हाहाकार करता रविशंकर की सदी का अन्त बन
उनकी राग का मधुर गान, प्रलय के सम्वेदन सा
मुखरित चहुँओर, देश काल की सीमा पार

प्रातः की स्वर्णिम किरण भैरवी को अंक भरती
समस्त संसार को अपने आगोश में ले
शरणागति में शेष विशेष, कहने सुनने को रहा न शेष

डॉ. रविशंकर के निधन पर
12.12.2012

47

हिंसक रतिक्रया का आवेश, भयंकर हैवानियत चेतना पर छाई
भटकाव में मानव अपने उठे दावानल से आक्रान्त हुआ
मदिरापान कर, अहं के दर्प में बौखलाया, दैत्य बन
चिंघाड़ता, साथियों को ले उत्पात के लिये राजपथ पर
शरीर में असीम शक्ति, कामिनी देख उन्माद ज्वार भाटे सा
नारी की समस्त सृजन शक्ति पर टूट पड़ा वज्रपात सा
शरीर पंगु, पर चेतना समर्पण करने में नही असमर्थ
दोनों के घोर संग्राम की परिणित था बलात्कार
पौरुष का हनन था, या संस्कृति की आत्मा का
बीज शुक्र, गिरकर जीव तन हो उठे, दर्प में हिंसा की लपटे बने
धरा मौन, रक्त से अनुरंजित, चहूं दिशाओं में छाई कालिमा करतूत की
स्तब्ध पूछ न पाता कोई आज हो गई किसकी अस्मिता भंग
निर्भया नारी की या सभ्य समाज की, दिल्ली में जगमगा गईं मशालें बन

26.12.2012

48

मेरी बगियों के फूल पौधे, नन्ही सी चिड़िया देखने आई
चू चू करती, फुदक फुदक कर खिलवाड़ करती, मन को भायी
कहाँ से आया इसमें इतना सारा उल्लास सौन्दर्यबोध का
स्फूर्तिमय स्वयं में अभिनन्दित, मग्न मग्न हर डाली पर इतराना
अपनी सम्वेदनाओं से अलोकित चिड़िया का ये छोटा–सा अस्तित्व
अपनी परिपूर्णता से उत्भासित करता स्वतन्त्र मुक्त रहने का रहस्य

मानव मन, जो हो रहा जटिल समस्याओं से घिरा, पूछ न पाता

समुद्र के अन्तराल तक, ज्ञान विज्ञान की खोज में, परिपूर्णता का ज्ञान
अपनी विषमताओं से गर्वित, स्वयं को खोज न पाता अनन्त से आँचल पसारे

49

उत्तराखण्ड की त्रासदी (16–17 जून, 2013)

मेरे हिमालय महान्, क्यों हो उठे आज विकराल
लय–प्रलय, सृष्टि संहार में आनन्दमय प्रहरी
वहाँ छाया है चहुँओर मृत्यु का भयभरा अन्धकार
पृथ्वी द्रवित हो धराशायी, मन्दाकिनी में समाई
तट पर जो था पशु–पक्षी, गर्वित मानव की करामात
त्राह–त्राह, फैला–चहुँओर शब्दनाद, जहाँ गुंजित था शंखनाद
कल्पना से परे, चिरन्तर शान्ति के दूत का विकराल रूप
सह न सकेगा देवभूमि पर ये अनाचार, हे ईश्वर,
अल्लाह, वाहगुरु, गॉड या शून्य, करुणामय थामों
विश्वासों से संजोई तपोभूमि पर ये हिमपात अकस्मात्
अश्रु झरझर बरसते, तुम्हारी शरणागति को तरसते
निशेष में शेष, हुए शब्द कहने सुनने में असमर्थ
समदर्शी स्थिर बैठे हो केदारनाथ में लाशों के बीच मूर्तिमान
मूंदो त्रिनेत्र को, आलोकित कर दो प्रकृति के आंगन को।

– मुनीरका विहार, जून, 2013